ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292RNI
REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 203-207**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

आर्य समाज की शिक्षा पद्धति

डॉ0 राजेश कुमार पाण्डेय

1567, आवास विकास कॉलोनी, कटरा बस्ती (उ0प्र0) भारत

Received-16.12.2024, Revised-15.12.2024, Accepted-29.12.2024 **E-mail : pandeyrajesh1001@gmail.com**

सारांशः ***दयानन्दीय शिक्षा पद्धति– व्यष्टि और समष्टि के सर्वांगीण और समन्वित विकास ही आर्य समाज की शिक्षा पद्धति का मुख्य लक्ष्य रहा। सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से स्वामी जी ने जो दीप प्रज्वलित किया। उससे सम्पूर्ण भारत भी नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित हुआ। अपने मान्यताओं को मौलिक चिंतन के रूप में स्वामी जी ने प्रस्तुत किया जिससे अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि द्वारा संसार की शारीरिक, आत्मिक और समाजिक उन्नति किया जा सके। व्यक्ति से समाज बनता है, व्यक्ति के निर्माण का साधन शिक्षा है। स्वामी जी के शब्दों में 'शरीर और आत्मा को उत्तम बनाने के लिए ही संसाकारों का प्रावधान किया गया है अर्थात शिक्षा का साधन संस्कार है। "मातृमान पितृमानाचार्यवान् पुरूषो वेद" शतपथ ब्राह्मण के इस वचन की व्याख्या करते हुए स्वामी जी ने लिखा– "वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य हो तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है"। स्वामी दयानन्द की शिक्षा पद्धति में शिक्षा का उत्तरदायित्व केवल स्कूल में पढ़ाने वाले अध्यापक पर न होकर माता, पिता और आचार्य तीनों पर है। इसलिए उन्होने तीनों को ही शिक्षक की संज्ञा दी है।***

कुंजीभूत शब्द– आर्य समाज, शिक्षा पद्धति, सर्वांगीण और समन्वित विकास, आत्मिक और समाजिक उन्नति, प्रावधान

1. उपदेश तथा व्याख्यान विधिः स्वामी दयानन्द सरस्वती 'सत्यार्थ प्रकाष' के तृतीय समुल्लास में लिखते हैं कि 'द्विज अपने घर के लड़कों का यज्ञोपवीत तथा कन्याओं का भी यथा योग्य संस्कार करके यथोविन्त आचार्य कुल अर्थात् अपनी–अपनी पाठषाला में भेज दें। आचार्य अन्तेवासी अर्थात अपने शिष्य एवं शिष्याओं को इस प्रकार उपदेष करें।'[2]

अतः इससे स्पष्ट होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी उपदेष को शिक्षा की प्रमुख विधि मानते हैं। उपदेष का अर्थ अध्यापक की उस क्रिया से है कि बालक को संस्कार प्रदान करने के लिए अध्यापक यह बताता है कि यह करो। ऐसा मत करो। यह सत्य है, यह असत्य है। इस प्रकार की विवेचना को उपदेष कहते हैं। आजकल की व्याख्यान विधि उपदेष विधि का ही रूपान्तर है।

2. स्वाध्याय विधिः स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार स्वाध्याय विधि के दो रूप हैं। एक तो कर्तव्य रूप में पढ़ने का काम करना तथा दूसरा, प्रयत्न रूप में ज्ञान–प्राप्ति का साधन बनना जिससे विद्यार्थी अपनी बुद्धि एवं शक्ति का ही प्रयोग करे। अतएव इन दोनों ही अर्थो में स्वाध्याय के लिए स्वामी दयानन्द ने जोर दिया है। इस सम्बंध में अपने सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी ने तेतिरीय उपनिषद से उद्धरण दिया है कि अपने अध्ययन में लापरवाही न करो।[3] बल्कि उसका लाभ उठाओ और उससे ज्ञान की वृद्धि करो तभी तो आचार्य की भाँति बुद्धिमान व्यक्ति जाने जाओगे।[4]

3. निरीक्षण विधिः स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपने 'सत्यार्थ प्रकाष' के तृतीय समुल्लास में लिखा है कि– "जो–जो पढ़ना–पढ़ाना हो, वह–वह अच्छी प्रकार परीक्षा करने योग्य हो। जो–जो श्रोत, त्वचा, चक्षु, जिह्म और घ्राण का– शब्द, स्पर्ष रूप, रस और गद्य के साथ आवरणरहित सम्बंध होता है, इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा का सम्बंध होता है। उससे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।[5]

इस प्रकार दयानन्द का विचार निरीक्षण (व्हेमतअंजपवद) तथा प्रदर्षन (क्मउवदेजतंजपवद) तथा प्रत्यक्ष अनुभव विधि से है। अस्तु, स्वामी दयानन्द सरस्वती भी प्रकृतिवादी एवं यथार्थवादी आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों की भाँति इस विधि को मान्यता देते हैं।

4. तर्क विधिः स्वामी दयानन्द सरस्वती जी अध्यापन के लिए तर्क विधि को मान्यता देते हैं। स्वामी जी का शास्त्रार्थ भी तर्क विधि पर आधारित है। शास्त्रार्थ में प्रष्नोत्तर विधि को भी अपनाते हैं। शंका समाधान के लिए प्रष्न होता है। इस विधि को स्वामी दयानंद जी मान्यता देते हैं। तर्क विधि का प्रयोग कोई नया नहीं है। वैदिक काल से ही इस विधि का प्रयोग होता रहता है। अपने विचारों का मण्डन एवं दूसरों के विचारों का खण्डन करने के लिए तर्क करने के लिए आठ प्रकार के प्रमाणों की आवष्यकता होती है। ये प्रमाण इस प्रकार हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिहय, अर्थापति, सम्भव और अभाव। स्वामी जी की इस तर्क विधि में संष्लेषण और विष्लेषण दोनों समाहित हैं।

व्यवहारिक विधिः स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने प्राचीन शिक्षकों की भाँति विभिन्न संस्कारों एवं दैनिक क्रियाओं पर बल दिया है। कि आचरण, गुरू, सेवा, खेलकूद, व्यायाम, गृहकार्य, संगीत, धनुर्वेद, आयुर्वेद और शिल्प की शिक्षा प्रायोगिक रूप से दी जानी चाहिए। यह व्यावहारिक विधि है। इस विधि का प्रयोग उपवेदों की शिक्षा में अधिक महत्व रखता है। इस प्रकार स्वामी दयानंद जी केवल सैद्धांतिक ज्ञान पर ही बल नहीं देते, वरन प्रायोगिक पक्ष पर भी बल देते हैं।

शिक्षा का पाठ्यक्रम एवं आर्य समाजः स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा का पाठ्यक्रम उत्तम है। प्राचीन परम्परा के अनुसार जो चार आश्रम जीवन में माने गये हैं उनमें प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम है जिसकी अवधि साधारणतया 25 वर्ष मानी गयी थी। दयानंद सरस्वती आश्रम–व्यवस्था में विष्वास रखते थे। उन्होंने प्रथम अवस्था (ब्रह्मचर्य आश्रम) में ब्रह्मचर्य पालन एवं अध्ययन का सुझाव दिया है। इस प्रकार महर्षि द्वारा प्रारम्भिक अवस्था से लेकर 25 वर्ष तक की अवस्था के लिए एक सुसंगठित पाठ्यक्रम के निर्माण का सुझाव दिया है। आयु–अनुसार उनका यह पाठ्यक्रम, आदर्षवादी विचारक प्लेटों तथा प्रकृतिवादी विचारक रूसों के समान ही है।

1. प्रथम पांच वर्ष तक का पाठ्यक्रमः– स्वामी दयानंद के अनुसार जब बच्चा गर्भ में आये तो माता को सात्विक भोजन करना चाहिए, शुद्ध आचरण करना चाहिए। 'जन्म से पाँचवे वर्ष तक बालक को माता शिक्षा दे। यह अवस्था वास्तव में अपरिपक्व बुद्धि एवं निर्माणारम्भ का है। अतएव इस काल में आदतों का निर्माण एवं बुद्धि को साधारण प्रयोग में लगाया जा सकता है।[6]

इस आयु में स्वामी दयानन्द सरस्वती सुन्दर आदतों का निर्माण सुआचरण की शिक्षा और भाषा–विकास चाहते हैं। उन्होंने खेलकूद की शिक्षा पर भी बल प्रदान किया है।

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

2. पाँच से आठ वर्ष तक की शिक्षा का पाठ्यक्रमः स्वामी दयानंद सरस्वती का मत है कि इस काल में शिक्षा का भार पिता पर होना चाहिए।[7]

स्वामी जी इस काल को शिक्षा का प्रारम्भ काल मानते हैं। इस काल में साधारण ज्ञान की बातें देनी चाहिए। साथ ही अक्षर एवं उच्चारण का ज्ञान दिया जाना चाहिए। साथ ही श्लोक, पद, सूत्र आदि कंठस्थ कराये जायें।

3. आठ वर्ष के बाद पच्चीस वर्ष तक की शिक्षा का पाठ्यक्रमः नवे वर्ष के आरम्भ में द्विज अपनी सन्तानों का उपनयन करके आचार्यकुल अर्थात जहाँ पूर्ण विद्वान और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हो वहाँ लड़के–लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिए गुरूकुल में भेज दें।[8]

इससे यह स्पष्ट होता है कि यह काल विद्याध्ययन का है। इस काल के विद्याध्ययन तथा विषयों का सविस्तार विवरण निम्नवत् है।

अ– आठ से ग्यारह वर्ष तक का पाठ्यक्रमः प्रथम पाणिनि मुनिकृत शिक्षा जो सूत्ररूप है उसकी रीति अर्थात इस अक्षर का यह स्थान यह प्रयत्न यह कारण है ..... इसी प्रकार यथायोग्य सभी अक्षरों का माता–पिता–आचार्य सिखलावें। इससे स्पष्ट होता है कि माता–पिता द्वारा दी गयी उच्चारण की शिक्षा को वैज्ञानिक ढंग से दुहरवा दें।[9]

तदन्तर व्याकरण अर्थात अष्टाध्यार्या के सूत्रों का पाठ .....फिर ..... पदच्छेद फिर ..... समाज और अर्थ की शिक्षा दें। कहने का अभिप्राय है कि व्याकरण का ज्ञान होना आवष्यक है। इसे पढ़ कर महाभाष्य पढ़ावे, डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभारत तथा तीन वर्ष में व्याकरण के वैदिक और लौकिक शब्दों का बोध कराकर सहजता से शिक्षा दे सकते हैं।[10]

ब– ग्यारह से तेरह वर्ष का पाठ्यक्रमः 'व्याकरण को पढ़ लेने के बाद यास्क मनुकृति निघष्टु छः व आठ महीने में पढ़ें और पढ़ावें।[9]

'निघष्टु' वैदिक शब्दकोष है और निरुक्त भाषा शास्त्र से सम्बंधित होता है। पिंगलाचार्यकृत छन्दो ग्रंथ जिससे वैदिक लौकिक छंदो का परिज्ञान, नवीन रचना और श्लोक बनाने की रीति सीखना अति आवष्यक होता है। श्लोक रचना विस्तार को चार माह में सीखा जा सकता है।[11]

इसके बाद मनुस्मृत्ति, बाल्मीकि रामायण, महाभारत, विदुर नीति, अच्छे–अच्छे प्रकरण, पदच्छेद पदार्थोक्ति, अन्वय विषेषण–विषेष्य और भावार्थ शिक्षकों द्वारा शिक्षार्थी को बोध कराया जाये।

स– तेरह से पन्द्रह तक का पाठ्यक्रमः स्वामी जी के अनुसार उपर्युक्त ज्ञान प्राप्त कर लेने पर दो वर्ष तक पूर्व मीमांसा, वैषेषिक न्याय, योग, सांख्य और वेदांत ..... ऋषिकृत व्याख्या सहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरल व्याख्या युक्त छः शास्त्रों का पढ़े और पढ़ावें।[12]

वेदांत के पूर्व ईष, केन, कंठ, प्रष्न, मुण्डक, ऐतरेय माँण्डूक्य तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारव्यक इनद स उपनिषदों को पढ़ लें। यहाँ तक दर्षन के क्षेत्र में विद्यार्थी का पदार्पण होता है।[13]

द– पन्द्रह से इक्कीस वर्ष तक का पाठ्यक्रमः इन छः वर्षो में चारों ब्राह्मण ग्रंथों (ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ) के सहित चार वेद का अध्ययन कराया जाय। अध्ययन करते समय स्वरोच्चारण, शब्द, अर्थ, क्रियास्पद का पूरा ध्यान दिया जाय।[14]

ध– इक्कीस से पच्चीस वर्ष तक का पाठ्यक्रमः वेदों के अध्ययन के बाद चार वर्ष के भीतर उपयोगी विषयों का अध्ययन आवष्यक है। इस अवधि में चरक, सुश्रुत आदि ऋषि–मुनि–प्रर्णात् वैधक शास्त्र, धनुर्वेद तथा प्रजा सम्बंधी कार्य के विषय, गन्धर्व वेद या गान विद्या, शिल्प विद्या, विज्ञान तथा कौषल क्रिया आदि और अन्त में ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन तथा अध्यापन किया जाये।[15]

उपरिवर्णित विषयों की ओर देखने से यह स्पष्ट होता है कि इनमें दो वर्ग हैं एक आध्यात्मिक विषयों का वर्ग, तथा दूसरा लौकिक विषयों का वर्ग। इन्हें सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक ढंग से पढ़ने–पढ़ाने के लिए कहा गया है। ज्योतिष, वेद, वेदांग, शास्त्र उपवेद का अध्ययन आवष्यक है।

पठनीय और अपठनीयः महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के मतानुसार उन्होंने ऐसे ग्रन्थों की सूची दिया है। जिन्हें पढ़ना चाहिए और जिन्हें नहीं पढ़ना चाहिए। पठनीय ग्रंथों में पणिनि के सूत्र, व्याकरण का ग्रंथ, अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरूक्त, छन्दशास्त्र, मनुस्मृति, बाल्मीकि रामायण वात्स्यायन मुनि का भाष्य, कपिल का सांख्य सूत्र, बोधायन मुनि का भाष्य है। चारों वेदों का अध्ययन आवष्यक है। छः शास्त्र, वेदांग, चरक द्वारा वर्णित चरक–संहिता (आयुर्वेद) सुश्रुत के ग्रंथ ज्योतिष और अन्य ग्रंथों में आर्य ग्रन्थों को पढ़ना अनिवार्य है।

अपठनीय ग्रंथों में जाल ग्रंथ, कपोल कलिपत और मिथ्या ग्रंथ कहा है। ये ग्रंथ है– सास्वत, चन्द्रिका, मुक्तिबोध, कौमुदी, मनोरमा, कोष में अमरकोष, छंद ग्रंथ में वृत्ति रत्नाकर, ज्योतिष में शीघ्रबोध, नायिका भेद, सुबलयानन्द, रघुवंष, माध, किरातार्जुनीयम्, मीमांसा में धर्म, सिंधु वर्तिका व्रतार्क, योग में हठ प्रदीपिका, सांख्य में तत्व कौमुदी, वेदांत में योग वशिष्ट अन्य कपोल भाषा ग्रंथ है। ये ग्रंथ स्वामी जी के अनुसार अपठनीय है।

इन ग्रंथों की सूची देखने से ज्ञात होता है। कि पुस्तकों में यही ढंग से पुस्तक मिलना और उनका अध्ययन कराना कठिन है। दूसरे अपठनीय ग्रंथों में भी कुछ आवष्यक ग्रंथ प्रतीत होते हैं। यथाषक्ति उपयोगी ग्रंथों का अध्ययन किया जाए जिसके लिए उत्तम गुणों से युक्त विद्यार्थी और अध्यापक की आवष्यकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दयानन्द द्वारा निर्धारित शिक्षा का पाठ्यक्रम सुव्यस्थित एवं लोकहितकारी है। इस पाठ्यक्रम से दिन प्रति दिन लाभ ही प्रतीत हो रहा है। आने वाले दिनों में स्वामी जी की वाणी का अनुषीलन लोग अत्यधिक स्वीकार करते हुए अनुकरण की ओर अग्रसर होंगे। इस प्रकार स्वामी जी द्वारा समर्थित शिक्षा का पाठ्यक्रम यथेष्ट लाभप्रद है और आज भी अतीव प्रासंगिक है।

स्वामी जी और शाला का रूप–स्वरूपः स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने कहा है कि 'अविद्या का नाष और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।15 इसके अलावा स्वामी दयानन्द जी ने सर्वप्रथम राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था एवं राष्ट्रीय–शिक्षा समस्याओं की स्थापना के लिए प्रयत्न किया। शिक्षा–संस्थाओं में 'आर्य–समाज' और 'वैदिक विद्यालय' आते हैं। आर्य समाज एक प्रकार की अविधिक संस्था एवं व्यवस्थापक संस्था है, जिसके द्वारा वैदिक विद्यालयों की देख–रेख संगठन और प्रचार होता है।

आर्य–समाज तथा वैदिक पाठषाला की स्थापना उन्होंने अपने जीवन में ही कर दिया। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद ही लोगों ने उनके नाम पर दयानन्द ऐग्लोवैदिक कालेज (1886) लाहौर में और गुरूकुल विद्यालय (1902) हरिद्वार के पास कागड़ी में खुले। इसके बाद बहुत से स्थानों पर विद्यालय खोले गये। हरिद्वार, वृदांवन, ज्वालापुर आदि स्थानों पर बालकों के लिए, तथा देहरादून, बड़ौदा, अलीगढ़ तथा जालन्धर में कन्या विद्यालय (गुरुकुल) भी स्थापित किए गए।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

ज्ञातव्य है कि गुरूकुल विद्यालय ही आज दयानन्द के आदर्षो पर चलते हैं। दयानन्द वैदिक कालेजों में नये ढंग की शिक्षा मिलती है। गुरूकुल के संबंध में सर जेम्स मेस्टन ने लिखा है– 'गुरूकुल इस प्रदेष में ही नहीं परन्तु समस्त देष में एक नवीन और विलक्षण प्रयोग है। यह एक अति आष्चर्यजनक मनोरंजक तथा प्रेणणा प्रदान करने वाली शिक्षा संस्था है। यहाँ सांसारिक वस्तुओं से मोह न करने वाले व्यक्तियों का एक समूह है जो एकान्त में अपने कर्तव्यों का पालन करने में तल्लीन है। साथ ही साथ यहाँ विद्यार्थियों का समूह है जिनका स्वास्थ्य सुन्दर है, जो आज्ञाकारी है, विष्वसनीय है, विचारक है, कर्तव्य परायण है तथा अत्याधिक सुखी हैं और जिन्हें भली भांति भोजन प्राप्त होता है।'[16]

गुरूकुलों की स्थापना का उद्देष्य स्वामी दयानन्द ने आर्य संस्कृति का सुरक्षण वेद और संस्कृत साहित्य का अध्ययन–अध्यापन , जीवन के आश्रम–धर्म की स्थापना, शिक्षा को राष्ट्रीय बनाने एवं प्रचलित परीक्षा–पद्धति में सुधार करना रखा था। इस प्रकार गुरूकुल में शिक्षा देना नवयुवकों को ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन के साथ तैयार करना और भारत के योग्य सुसंस्कृत व्यक्ति बनाना है जिससे विष्व के समक्ष भारत को महत्व और गौरव का स्थान दिया जा सके। गुरूकुल की स्थापना शहर से चार मील की दूरी पर शान्त स्थान पर की जावे। बालकों के लिए अलग और बालिकाओं के लिए अलग विद्यालय हो, दोनों के विद्यालयों में कम से कम दो कोष की दूरी हो। पांच वर्ष के बाद के बालक–बालिकाओं एक दूसरे के विद्यालय में आ जा न सकें। विद्यालय का जीवन ब्रह्मचर्य पूर्ण हो, सादा हो तथा संयमित हो। विद्यालय में उत्तम शिक्षा की व्यवस्था हो जिससे शरीरिक, भावात्मक एवं बौद्धिक विकास हो। गुरूकुल सावास (रेजिडेन्सियल) होने चाहिए जिसमें सभी विद्यार्थियों का एक समान वस्त्र, खाना इत्यादि हो। दरिद्र और धनी, साधारण व्यक्ति एवं राजकुमार और सभी वर्ण के लोगों के लिए गुरूकुल की शिक्षा व्यवस्था हो। शिक्षा निःषुल्क हो और शिक्षा की अवधि पच्चीस वर्ष की अवधि तक होनी चाहिए। यदि कोई विद्यार्थी आगे पढ़ना चाहता है तो अजीवन ब्रह्मचारी रहकर शिक्षा ग्रहण कर सकता है। गुरूकुल में वेद, वेदांग, दर्षनषास्त्र, आयुर्वेद, संगीत, नृत्य, शिल्प, गणित, ज्योतिष, भूगोल, भूगर्भ, विद्या, यन्त्र कल, हस्त कौषल आदि विषयों का सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दोनों ज्ञान दिया जाएगा। अतः, इस प्रकार गुरूकुल केवल प्राचीन संस्कृति के केन्द्र नहीं है बल्कि आधुनिक समय के ज्ञान–विज्ञान एवं सभ्यता के केन्द्र भी हैं।

स्वामी जी और आचार्य तथा छात्र–कुलः स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आचार्य तथा छात्रों में कुछ गुणों की अपेक्षा की है और उन्हें कुछ कर्तव्यों का पालन करना तथा पारस्परिक सम्मानित सम्बंध स्थापित करना आवष्यक बताया है। शिक्षक के सम्बंध में कहते हुए तीन व्यक्तियों को स्वामी दयानन्द ने शिक्षक बताया है– माता, पिता और आचार्य। माता–पिता वास्तव में घर पर तथा आचार्य गुरूकुल में शिक्षा न के अधिकारी हैं। माता का कर्तव्य है 'गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुषीलता का उपदेष करें।..... बालकों की सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी अंग से कुचेष्ठता न करने पावे।17 जब बालक बोलने लगे तो शुद्धोच्चारण एवं सुन्दर वाणी में बोलने का अभ्यास करावे। ऐसी क्रियाएं करावे जो व्यर्थ की न हों। सदा सत्य बोलने, प्रसन्न वदन रहने, धैर्य और शौर्य से काम करने तथा सम्मान के साथ व्यवहार करने की शिक्षा माताएँ बालकों को दें।

पांच वर्ष के बाद पिता की जिम्मेदारी शिक्षक के रूप में होती है। यहाँ से कुछ सविधिक शिक्षा का कार्य शुरू होता है क्योंकि पांच वर्ष की आयु में संस्कृत, अन्य भाषा तथा गीत आदि का ज्ञान शुरू होता है। पिता इन भार को सम्भाले और पिता का कार्य माता द्वारा दिये गये ज्ञान को आगे बढ़ाना है तथा अधिक अभ्यास कराना है। आठ वर्ष समाप्त होने पर पिता बालक का यज्ञोपवीत संस्कार करें।

आठ वर्ष के उपरान्त आचार्य की जिम्मेदारी होती है और जब माता–पिता बालक को उन्हें सौंपे तो वह उनका उपनयन संस्कार फिर करे और सबसे पहले उन्हें 'गायत्री मंत्र' की शिक्षा दें और उसका अर्थ समझावे। इससे बालक की संध्योपासनायज्ञ, प्राणायाम तथा गुरू के लिए जो नैतिक कार्य जैसे पानी लाना, यज्ञ के लिए समिधा एकत्र करना आदि छात्र को उन सब का ज्ञान दे।

तदुपरान्त आचार्य शुद्ध आचरण एवं ब्रह्मचर्य के पालन पर जोर देते हुए छात्रों को उपदेष दे कि हे छात्रों, सत्य बोलो, धर्म पर चलो, अपने अध्ययन में (लापरवाही) न करो। जो कर्म आन्नद दायक, धर्म–सत्य से युक्त हैं उन्हें ही करो, अन्य को नहीं। जो हमारे सुन्दर चरित्र को बनावे, जो ब्राह्मण (विद्वान) में है उन्हें तुम भी विष्वास करो। श्रद्धा, अश्रद्धा, शोभा, लज्जा, भय और प्रतिज्ञा के आधार पर दान दो। इस पर यदि तुम्हें कर्म या वृति (भावना) में किसी प्रकार का संषय हो तो सन्मार्गी, पक्षपात रहित, धर्मात्मायोगी –अयोगी जैसा करे वैसा तुम भी व्यवहार करो। यही आदेष और उपदेष वेद और उपनिषद के हैं। 'इन्हीं का पालन करो, इन्हीं की उपासना करो।18 आचार्य या शिक्षक को इस प्रकार उपदेष देने के पूर्व ही इन सब गुणों से युक्त होना चाहिए– ब्रह्मचारी, संयमी, सर्व विद्याविभूषित, सब कौषल पूर्ण, शिष्ट, सभ्य शीलवान् एवं पूर्ण दक्ष। तभी तो विद्यार्थी के लिए पर्याप्त वाक्य है 'मातृवान् पितृवान, आचार्यवान् पुरूषों वद' अर्थात् पुरूष को माता, पिता और आर्चाय के गुणों से युक्त जानना चाहिए।

अस्तु, स्पष्ट कहा जा सकता है कि उसे ब्रह्मचारी, माता–पिता–गुरू सेवी, आज्ञापालक संयमित एवं एकान्तवासी जीवन वाला, कर्म–धैर्य–विद्या–परायण, दानी, श्रद्धा–षील–धैर्य–उत्साह युक्त लक्ष्यनिष्ठा, वर्णाश्रम, धर्मपालक, स्वस्थ, साधारण जीवन वाला, सुख त्याग करने वाला, परिश्रमी, सभ्य सद्गुणी सच्चरित्र, बुद्धिमान, समाज–हितैषी एवं सुधारक, ऋतु समय के अनुकूल पठन–पाठन करने वाला ईष्वर, ऋतों आदि में विष्वास करने वाला होना चाहिए।

आर्य समाज की शिक्षा में गुरू और शिष्य संबंधः स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने गुरू और शिष्य का संबंध बहुत समीप का माना है। उनके अनुसार प्राचीन वैदिक एवं ब्राह्मण कालीन युग का गुरू–शिष्य सम्बंध होना चाहिए। यद्यपि यह प्रथा आधुनिक युग में संभव नहीं है फिर भी 'गुरूकुल' के अध्ययन काल में विद्यार्थी अपने पितृकुल को छोड़कर गुरूकुल में आ जाये तथा पूरे ब्रह्मचर्याश्रय तक नहीं रहकर विद्याध्ययन करे। इस प्रकार वह 'अन्तेवासी' बने। गुरू भी उसके शारीरिक, भावात्मक और बौद्धिक विकास का व्यक्तिगत एवं सामाजिक दृष्टिकोण से विकास करे।

गुरू और शिष्य के सम्बंध में एक बात और ध्यान देने की है वह है शारीरिक और मानसिक संयम की। दयानन्द के सम्बंध में कुछ विचार कुछ लोगों ने व्यक्त किये हैं उनसे यह भाव और सम्बंध स्पष्ट होता है। 'सत्यव्रत जी'। ने लिखा है कि बालकों को इस प्रकार शिक्षा देनी चाहिए कि भविष्य में वे विषम से विषम परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना कर सके। ब्रह्मचारी का जीवन सैनिक का जीवन है जिसमें उसे संयम तथा आज्ञापालन के साथ रहकर, जीवन बिताना पड़ता है। इस प्रकार का संयमता का जीवन केवल शारीरिक रूप में ही न हो बल्कि मानसिक रूप में भी हो। ऐसा विचार 'ह्यूम महोदय' का है। यही कारण था कि गुरू के सम्पर्क में रहकर योगी की तरह आठ प्रकार के विषय–भोग से दूर रहे तथा एकान्त में विद्यालयों की स्थापना और गुरूओं के साथ वास इस प्रकार के योगपूर्ण जीवन के लिए ही थे।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

गुरू–शिष्य का ऐसा संबंध इसलिए कराया जाता है कि वे सत्य ज्ञान एवं दर्षन की खोज करें। इसके लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पांच कसौटियाँ बताई है–

1. ईष्वर ओर वेद की सत्यता,
2. प्रकृति और सृष्टि के अनुकूल कर्मो की सत्यता,
3. विद्वानों और धार्मिक व्यक्तियों के कथनों की सत्यता और ग्राह्यता,
4. आत्मा की पवित्रता और उसमें विष्वास की सत्यता,
5. आठ प्रकार के प्रमाणों की सत्यता,

इस प्रकार गुरू के द्वारा मार्ग–प्रदर्षन एवं सहयोग के सहारे शिष्य सत्यान्वेषी बनता है, और सत्य को खोजता है। अतएव, गुरू और शिष्य का सम्बंध सहयोगी एवं कल्याण की भावना से पूर्ण होना चाहिए।

ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरू की आवष्यकता होती है। गुरू का अर्थ बड़ा होता है। गुरू बालक के तीन प्रकार की शक्तियाँ प्रदान करता है।

1. शारीरिक बल 2. आत्मिक बल 3. सामाजिक बल।

शारीरिक बल होने से रोगों से निवृत्ति मिलती है। मनुष्य दीर्घायु बनता है ऊर्जावान बनता है क्रियाषीलता बढ़ती है और व्यक्ति समाज के लिए उपयोगी बनता है। इसी आधार पर प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अरस्तु ने कहा है कि "स्वस्थ्य शरीर में ही स्वस्थ्य मस्तिष्क का विकास होता है। आत्मिक बल की उन्नति से चरित्र निर्माण होता है। आत्मविष्वास बढ़ता है। शान्ति पूर्वक विचार करने की शक्ति प्राप्त होती है और विचारों को वह कार्य में परिणत कर सकता है। समाजिक बल बाह आडम्बर को दबा देता है और अज्ञान रूपी अंधकार को समाज में प्रविष्ट नहीं होने देता। जिस प्रकार गुरू शिष्य को धर्मात्मा बनाकर संसार को शान्ति गृह बनाता है इसी प्रकार वर्तमान में भी प्रयत्न करना चाहिए। यही आर्य समाज का उद्देष्य है।

योग्य गुरू के अभाव में समाज में अज्ञानता एवं आडम्बर फैलता है। बिना अज्ञानता को दूर किये ईष्वर उपासना के कोई भी उपाय शास्त्र विरूद्ध हैं। वर्तमान समय में अज्ञानता बढ़ता गया। गुरू भी गुरू नहीं रहे। पहले गुरू के उपदेष में इतना बल था कि शिष्य उपदेष के अनुसार धर्म में लगे रहते थे। गुरू वही होता था जिसके सत्संग से विद्या की वृद्धि, ईष्वर की भक्ति और धर्म आदि कल्याणकारी विषयों में इतनी प्रवृत्ति बढ़ जाती है कि सांसारिक पदार्थों के लिए कोई कितनी भी लालच दिखाये वह उन पदार्थों को तृणवत समझकर सांसारिक मोह में नहीं फसता है, न ही अपने सत्य सिद्धांतो को छोड़ता है।

गुरू का कार्य सबसे महत्वपूर्ण है वह संसार के प्रति सबसे अधिक जवाबदेह है। संसार में जहाँ कहीं अज्ञानता है उसे हटाना गुरू का दायित्व है गुरू विरक्त होता है। संसार की सुख सुविधाएँ उसे आकृष्ट नहीं करती। तपस्या एवं त्याग के बल से वह स्वयं तो जलता है पर सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता है। आर्य समाज ऐसे गुरू की कल्पना करता है जो पाखण्ड से परे एवं भेदभाव से दूर हो।

"परं ब्रह्मान्वेषमाणाः समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः।"

अर्थात वे पिप्लाद के पास हाथ में समिधा लेकर परमात्मा की प्राप्ति किस प्रकार से हो उसकी कामना करते हुए गये।

"तान्हस ऋषिरूवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरंसंवत्स्यथ .....।"

उन महषि पिप्पलाद जी ने कहा एक वर्ष, एक तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धापूर्वक निवास करो, पश्चात् अपनी इच्छा पूर्वक प्रष्न करो। यदि मै जानता होउगां तो उत्तर दूंगा। गुरू–शिष्य परम्परा आर्य शिक्षा पद्धति में गुरू तथा शिष्य का वैसा ही सम्बन्ध रहता है जैसा कि गर्भस्थ बालक का माता के साथ। जैसे माता के गर्भ में बालक का पालन–पोषण होता है वैसे ही आचार्य कुल के ब्रह्मचारी का निर्माण होता है अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में गुरू शिष्य का सम्बन्ध इस प्रकार से बतलाया है–

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्री स्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।[19]

निष्कर्ष–आर्य समाज द्वारा प्रतिपादित सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार शिक्षा प्रणाली ही है, जिसे गुरूकुल शिक्षा–प्रणाली कहा गया है, आर्य समाज के पाठ्यक्रम में आर्ष–ग्रन्थों को पढ़ाने पर जोर है। शिक्षा में विज्ञान की शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली एक ऐसे क्रान्तिकारी प्रगातिशील कार्यक्रम का श्रीगणेश करती है जिससे मानव समाज के सभी अन्याय, विषमताएँ और शोषण दूर किये जा सकते है।

महर्षि ने केवल स्त्री–शिक्षा का समर्थन ही नही किया, अपितु पुरूषों और स्त्रियों की शिक्षा को एक समान महत्त्व दिया। उन्होंने शूद्रो की शिक्षा की भी हिमायत की और उन्हें अन्यों के समान सुविधाएँ दिए जाने की पैरवी की। उन्होंने चिकित्सा, युद्ध विद्या, शिल्प और पदार्थ विज्ञान–इन सबकी शिक्षा दिए जाने पर जोर दिया है। उन्होनें माता–पिता और आचार्य तीनों को बालक–बालिकाओं का शिक्षक माना है। एक वाक्य में स्वामी दयानन्द सरस्वती आधुनिक भारत के सबसे महान चिन्तक होने के साथ–साथ एक शीर्ष और क्रान्तिवाही शिक्षाविद् थे। इस लिए आर्य समाज की शिक्षा पद्धति भारतीय शिक्षा के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लक्ष्मी दत्त आचार्य, (अध्यक्ष आर्य महाविद्यालय पानीपत, हरियाणा), दयानन्दीय शिक्षा पद्धति, पृ0 426
2. महर्षि दयानन्द सरस्वतीः "सत्यार्थ प्रकाश", तृतीय समुल्लास, पृष्ठ सं0 36।
3. महर्षि दयानन्द "सत्यार्थ प्रकाशः", तृतीय समुल्लास, पृष्ठ सं0 56।
4. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, द्वितीय समुल्लास
5. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, द्वितीय समुल्लास
6. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, द्वितीय समुल्लास
7. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, द्वितीय समुल्लास
8. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, द्वितीय समुल्लास
9. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, द्वितीय समुल्लास
10. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, द्वितीय समुल्लास

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

11. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, द्वितीय समुल्लास
12. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, तृतीय समुल्लास
13. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, तृतीय समुल्लास
14. प्रो0 लक्ष्मी नारायण गुप्तः शिक्षा दर्षन एवं महान् शिक्षा शास्त्री पृष्ठ सं0 29
15. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, तृतीय समुल्लास पृष्ठ सं0 63
16. महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाशः, तृतीय समुल्लास पृष्ठ सं0 65
17. आर्य समाज के नियम
18. आर्य समाज– लाला लाजपत राय
19. ओऽम् भूर्भुवस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। (यजुर्वेद, अध्याय 36 भ0 3)
20. तैतिरीय उपनिषद् 'सत्यार्थ प्रकाश' (तृतीय समुल्लास) से उद्धृत + पृष्ठ सं0 54–55

*****